International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 8, August- 2017,
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939

मौर्यकालीन कृषि–यूनानी दृष्टि : एक अध्ययन

डॉ0 अखिलेश कुमार चौबे
प्रवक्ता,
किसान आदर्श कन्या महाविद्यालय, बेलवां,
सिसवां, बाजार, महराजगंज।

भारत में मौर्य साम्राज्य की स्थापना के फलस्वरूप राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। सर्वप्रथम मौर्य राजवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त के शासन काल में भारत का बहुत बड़ा हिस्सा राजनीतिक एकता के सूत्र में बँध गया, जिसमें पूर्वी पयोधि से लेकर पश्चिमी पयोधि तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मैसूर तक का क्षेत्र सम्मिलित था। इतने वृहद् क्षेत्र पर इससे पूर्व किसी भी वंश के शासकों द्वारा राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित नहीं किया गया। राजनीतिक एकीकरण के परिणामस्वरूप राज्य ने सर्वप्रथम इसी काल में कृषि से सम्बन्धित नीति को क्रियान्वित किया।

बहुत बड़े भू–भाग पर अधिकार कर लेने के कारण मौर्य–शासन के अन्तर्गत अनेक प्रकार की भूमि आ गयी। तत्कालीन स्रोतो से ज्ञात होता है कि उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में समुद्र के मध्य कई प्रकार की भूमि, जिसमें वन्य भूमि, ग्राम्य भूमि, पर्वतीय भूमि, जलीय भूमि, शुष्क भूमि, सम भूमि, विषम भूमि आदि थी।[1] अत्यधिक अन्न उत्पादन के लिए इस काल में कृषि–सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त करना जरूरी हो गया। राजकीय कृषि के सर्वोच्च अधिकारी 'सीताध्यक्ष' के निर्देशन में राजकीय भूमि पर कृषि की जाती थी। सीताध्यक्ष कृषितंत्र एवं शुल्वशास्त्र का विशेषज्ञ होता था। उसे वृक्षारोपण एवं संरक्षण का ज्ञान होता था।[2] कृष्यान्न उत्पादन पर्याप्त मात्रा में हो, इसके लिए अच्छे बीजों का संग्रह किया जाता था। ये बीज विभिन्न प्रकार के थे, जिसमें धान्य, पुष्प, फल, शाक, कन्द, मूल, लता, क्षौम आदि प्रमुख थे।[3] बीज को खेत में बोने से पहले अनेक प्रकार से उसकी जुताई की जाती थी। विभिन्न प्रकार की फसलों के उत्पादन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की भूमि का चयन किया जाता था। कृषिगत कार्यों के लिए तत्सम्बन्धी यंत्र, उपकरण, वृषभ, लुहार, बढ़ई एवं रस्सी बनाने वाले व्यक्ति की उपलब्धता राज्य द्वारा सुनिश्चित की गयी थी।[4] कृषि को हानि पहुँचाने वाले जानवरों की भी रोकथाम की व्यवस्था की गयी थी।

फसलों के प्रकार के आधार पर राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की गयी थी। शुष्क क्षेत्र में कृषि के लिए 16 द्रोण वर्षा अपेक्षित होती थी। आर्द्र प्रदेश में उसका डेढ़ गुना अधिक (24 द्रोण) वर्षा जल की आवश्यकता होती थी। सावन, भाद्रपद, क्वार एवं कार्तिक महीने वर्षा ऋतु के अन्तर्गत आते थे। चातुर्मास के प्रथम तथा अन्तिम महीने कुल वर्षा का 1/3 तथा भादो एवं क्वार माह में 2/3 वर्षा होने पर फसल उत्तम प्रकार की होती थी। बीज का चुनाव और उसको खेत में बोते समय उस क्षेत्र में

सिंचाई हेतु जल की उपलब्धता का ध्यान रखा जाता था। वर्षा की मात्रा को वर्षामापक यंत्र द्वारा मापा जाता था, जो कोष्ठागार के सम्मुख लगाया जाता था।

फसलों की बुवाई ऋतुओं के अनुसार की जाती थी। यथा–वर्षा के आरम्भ में चावल के दो प्रकार शालि एवं ब्रीहि, कोद्रन (कोदो), तिल, प्रियंगु आदि की बुवाई कर देने की जानकारी प्राप्त होती है। वर्षा ऋतु के मध्य में मूँग (मुग्द), माष एवं वर्षा के पश्चात् कुसुम्भ, मसूर, यव (जौ), गेहूँ, अलसी आदि का बोया जाना लाभदायक माना जाता था।[5] इसके अलावा मौसम अनुकूल होने पर खेतों में अनाज बोया जाता था। इन विवरणों से संसूचित होता है कि इस काल तक आते–आते कृषि–सम्बन्धी ज्ञान, यथा–जलवायु, भूमि का परीक्षण, बीज का शोधन आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी हो गयी थी।

मौर्यकाल में उत्पादित फसलों में विविधता परिलक्षित होती है। इस प्रकार की विविधता का सीधा सम्बन्ध वहाँ की जलवायु, कृष्य–भूमि, जल–व्यवस्था आदि से रहा होगा। ऐतिहासिक स्रोतों से पता चलता है कि इस काल में गन्ना तिल, कपास आदि पर्याप्त मात्रा में उगाया जाने लगा था।[6] मौर्य शासन में मसालों के उत्पादन पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया था। मसालों में मुख्य रूप से काली मिर्च, अदरक, जीरा, चिरायता, सरसों, धनियाँ, मैनफल आदि की कृषि की जाती थी।[7] इस काल में फलों एवं सब्जियों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई, जिससे इसकी गणना राजस्व के स्रोत के रूप में होने लगी। राज्य की अर्थव्यवस्था में गन्ना, जामुन, अनार, आम, नींबू, आँवला, इमली, कटहल एवं बेर आदि का महत्वपूर्ण योगदान था।

मौर्य काल में कृषि के लिए विविध प्रकार के उपकरणों का प्रबन्ध किया गया था। यथा–फाल, हसिया, सिल, लोढ़ा, मूसल, ओखली, कूटने–पीसने की मशीन, सूपा, खाँची (खँचिया), चलनी आदि।[8] अत्यधिक अन्नोत्पादन के निमित्त इस काल में बीजों के संरक्षण की व्यवस्था की गयी थी। इस प्रक्रिया में बीज को एक सप्ताह तक रात में ओस में, और दिन के समय में धूप में रखा जाता था। दलहनी फसलों के बीज को तीन दिन या पाँच दिन रात में ओस में तत्पश्चात् धूप में रखना अपेक्षित था। गन्ना जैसे फसलों का तना ही बुवाई के लिए उपयुक्त था, जिसके कटे हुए स्थान पर शहद, घी तथा सूअर की चर्बी के साथ लेपन किया जाता था। इससे तना रूपी बीज संरक्षित हो जाता था।

कृषि के लिए जल की अपरिहार्यता सर्वविदित है। इसके अधिकांश भाग की पूर्ति मौर्यकाल में वर्षा द्वारा होती थी। वर्षा की पूर्व सूचना का अनुमान वृहस्पति की स्थिति एवं गति से लगाया जाता था। इसके अलावा शुक्र के उदय, अस्त एवं गति से भी गणना की जाती थी। सूरज की गति की स्थिति द्वारा बीज के अंकुरित होने का अनुमान व्यक्त किया जाता था। इस प्रकार इस काल में कृषि ज्योतिष विद्या पर आधारित भी थी।[9] इस समय ऐसी वर्षा कृषि कार्य हेतु लाभकारी मानी जाती थी, जिसके बरसने के अन्तराल में हवा एवं सूरज की रोशनी समान रीति से मिलती रहे।

यूनानी इतिहासविदों की दृष्टि में मौर्यकालीन कृषि–व्यवस्था उन्नत थी। मेगास्थनीज के अनुसार जमीन इतनी उपजाऊ थी कि साल में दो फसल पैदा कर लेना मामूली बात थी।[10] डायोडोटस, सिल्युकस एवं स्ट्रैबो ने कहा है कि यहाँ एक वर्ष में दो फसल एवं फलों की प्राप्ति होती है। जाड़े तथा गर्मी की फसलों को प्रत्येक वर्ष नियमित वर्षा का जल भी प्राप्त होता है, जिसके फलस्वरूप अच्छी फसल के अलावा प्रचुर मात्रा में फलों की भी प्राप्ति हो जाती है।[11] आगे वह कहता है कि मिस्र में नील नदी दक्षिणी मानसून से भर जाती थी, परन्तु भारत की नदियों में बाढ़ उत्तरी मानूसून द्वारा आती थी।[12] यहाँ वर्षा साल में दो बार होती थी, जिसका लाभ किसानों को मिलता था। डायोडोरस ने स्वतः स्फूर्त तथा दलदली भूमि में उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के स्वाद–युक्त खाद्य मूलों की प्रशंसा किया है।

नियार्कस तथा एरिस्टोबुलस के विवरणों से ज्ञात होता है कि बाढ़ का जल नीचे उतरने के बाद भूमि पूरी तरह सूखी नहीं होती थी, जिससे कृषकों को इसमें बीज बोने में आसानी होती थी। इस कार्य के लिए किसान अपनी सुविधानुसार उपकरण का प्रयोग करते थे।[13] यवन लेखकों ने मौर्य कालीन भारत में कृषि उत्पादों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। तद्नुसार यहाँ के सभी वर्ग में चावल या चावल से तैयार किये गये पदार्थ सर्वाधिक लोकप्रिय थे।[14] शराब जैसे पेय पदार्थ का निर्माण भी चावल से होता था। इस प्रकार तैयार शराब जौ से तैयार की गयी शराब की अपेक्षा अधिक पसंद की जाती थी। एक अन्य यूनानी लेखक यह बताता है कि वर्षा शुरू होने से पहले ही धान के बीज खेत में डाल दिये जाते थे। इसके अनन्तर उनकी रोपाई एवं सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी। फसलों की सिंचाई–हेतु तालाब तथा खेतों में मेंड़–युक्त क्यारियाँ बना दी गयी थीं। नियार्कस के विवरण के आधार पर स्ट्रैबो लिखता है कि भारतीय कपास से सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्त्र बनाये जाते थे। यवन इन वस्त्रों का उपयोग करते थे। कपास का प्रयोग तकिया बनाने के लिए भी किया जाता था।

मौर्य कालीन कृषि एवं कृषि–उत्पादों से अभिभूत होकर डायोडोरस प्रभृति यूनानी लेखकों ने यह कहने से अपने आपको रोक नहीं पाया कि कृषि–जगत में जो भी उत्पाद ज्ञात है, वे सभी भारतीय भूमि पर उगते हैं। यहाँ की भूमि के ऊपर विविध प्रजाति के फसल उगाये जाते हैं। यही नहीं यहाँ की भूमि के नीचे सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा आदि धातुएँ भी पायी जाती हैं। खेत में मक्का बाजरा, उन्नत किस्म का दलहन एवं चावल भी उगाया जाता है।[15] साल में चूँकि दो बार वर्षा होती थी, इसीलिए इस क्षेत्र में अनाज का अभाव कभी नहीं रहा। एरिस्टोबुलस को उद्धृत करते हुए स्ट्रैबो लिखता है कि भारत के दक्षिणी भाग में दालचीनी एवं जटामाँसी तथ अन्य प्रकार के खुशबूदार मसालों की कृषि बहुतायत में की जाती थी।[16] यवन लेखकों ने मौर्य युग में गन्ने के रस और अंगुर निर्मित शराब का उल्लेख किया है।

मौर्य काल में शासन तथा समाज द्वय कृषि एवं कृषक समुदाय के हितों को सुरक्षित रखने हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते थे। यूनानी इतिहासविद् मेगस्थनीज के अनुसार मौर्यकालीन भारतीय समाज सात जातियों (वर्ग) में विभाजित था, जिसमें से एक जाति (वर्ग) कृषकों का भी था। इस वर्ग को शासन का

सम्पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता था। इन्हें सैनिक सेवा से मुक्त रख गया था। ये सदैव कृषि–कर्म में लगे रहते थे। यहाँ तक कि ये नगरों में जाने से अपने आप को रोकते थे। तीसरे वर्ग में शामिल आखेटक, गोपालक आदि की भूमिका मौर्य युगीन कृषि में महत्वपूर्ण थी। डायोडोरस कहता है कि इस वर्ग के परिश्रम के परिणामस्वरूप ही मौर्य शासन के अन्तर्गत आयी अकृष्ट भूमि कृषि योग्य बन गयी।

संदर्भ–सूची

1. अर्थशास्त्र, 9.1.18–19।
2. तत्रैव, 2.24.1।
3. तत्रैव।
4. तत्रैव, 2.24.3।
5. तत्रैव, 2.24.13–15।
6. तत्रैव, 2.15.41।
7. तत्रैव, 2.15.20।
8. तत्रैव, 2.15.62।
9. तत्रैव, 2.24.7–8।
10. थापर, रोमिला 2010, पूर्वकालीन भारत (प्रारम्भ से 1300 ई0 तक) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 सं0 236।
11. मजूमदार, आर0सी0 1960, द क्लॉसिकल एकाउण्ट्स ऑफ इण्डिया, पृ0 सं0 252 ज्यॉग्राफी ऑफ स्ट्रैबो 20, कलकत्ता।
12. स्ट्रैबो, 19।
13. ज्यॉग्राफी ऑफ स्ट्रैबो, 18, द क्लासिकल अकाउण्ट्स पृ0 सं0 251।
14. तत्रैव, स्ट्रैबो (53), पृ0 सं0 270।
15. ज्यॉग्राफी ऑफ स्ट्रैबो (18), द क्लासिकल अकाउण्ट्स, पृ0 सं0 251।
16. थापर, रोमिला 2010, तत्रैव, पृ0 सं0 239।

******